समकालीन कविता : स्पेस, भूगोल और काल सम्पृक्ति

रोहिताश्व

समकालीन कविता अपने इतिहास बोध और युगीन यथार्थ से सम्पृक्त है। काल-संर्साता या युगीन अवधारणा उसमें गतिहीन न होकर गत्यात्मक रूप में है। वह गुजरते हुए काल को, विभिन्न भाव-अक्षांसों को शब्दों में अंकित करती है। पर वे शब्द होते हैं काव्य भाषा के साँच में ढले हुए। अपने युग से जितनी तीखी और उग्र मुलाकत समकालीन काव्य सृजना करती है उतनी किसी अन्य दौर की नहीं।

सामान्यतः रचनाकार अपने परिवेश और भूगोल का ही चित्रण अपनी कविता में नहीं करता है बल्कि वह अपने 'विजन' से प्रांत, देश की सीमाएँ लाँघकर वैश्विक परिदृश्य और सार्वभौमिकता का चित्रण करता है। कविता का थल-स्थल-स्पेस उसकी मार्किक संवेदनात्मक अनुभूति या केन्द्रीय भावभूमि होता है, वह किसी भी विचार, संज्ञा, वस्तु, भाव या पात्र को स्पेसथल के रूप में चुन सकता है। उदाहरण के लिए शमशेर अपनी लम्बी कविता 'अमन का राग' में विश्व के अनेकानेक रचनाकारों की औदात्य परम्परा को कविता का स्पेस-थल निर्धारित करते हैं -

"मैं शेक्सपियर का ऊँचा माथा उज्जैन की घाटियों में। झलकता देख रहा हूँ। और कालिदास को वैमर के कुंजों में विहार करते। और आज तो मेरा टैगोर मेरा हफिज मेरा तुलसी मेरा। गालिब। एक-एक मेरे दिल के जगमग पावर हाऊस का। कुशल आपरेटर है।"

रचनाकार जब सार्वदिशिक, सार्व कालिक और सार्वभौमिक आकांक्षाओ-अभिलाषाओं को व्यक्त करता है तो वहाँ स्पेस और काल की परिधियाँ तिरोहित हो जाती है। वह अपनी संवेदनाओं, विचारों, कल्पनाओं के स्पेस-थल-भूगोल को इतने विस्तृत आयाम प्रदान करता है कि रचनात्मक और संवेदनात्मक धरातल पर विश्व के अन्यान्य मानवतावादी कलाकारों की जमीन-स्पेस-भूगोल, रंग-रेखाओं और औदात्य की अनुर्धाराओं में अपने को समाहित या अनुर्विलयित कर लेता है। पात्र, परिवेश, ईतिहास, भूगोल और संस्कृति की सरहदें कलात्मकता की काला सम्पृक्ति में एकमेव हो जाती है। अमन का राग में शमशेर की काव्याभिव्यक्ति स्पेस-थल के अभिनव आयाम रेखांकित करती है -

"आज मैंने गोर्की को होरी के आंगन में देखा। और ताज के साये में राजर्षि कुंग को पाया। लिंकन के हाथ में हाथ दिए हुए। और तालस्ताय मेरे देहाती यूपियन होंठो से बोल उठा। और अरागों की आँखों में नया इतिहास। मेरे दिल की कहानी की सुर्खी बन गया मैं जोश की वह मस्ती हूँ जो नेरुदा की भवों से जाम की तरह टकराती है। वह मेरा नेरुदा जो दुनिया के शांति पोस्ट आफिस का। प्यारा और सच्चा कासिद वह मेरा जोश कि दुनिया का मस्त आशिक। मैं पंत के कुमार छायावादी सावन-भादों की चोट हूँ।

शमशेर की काल-सम्पृक्ति यह की विभिषिका को रोकने-थामने और मानवीय विकास की सच्ची कोशिशों से है। यही उनकी युग संसक्तिवाली सकारात्मक दृष्टि है। पर इसके स्थल-स्पेस एवं भूगोल की परिधि उन्होंने रुस के साम्यवादी लेखक गोर्की के लेखन से जोड़ी है और उसकी रचना भूमि के कारण, निम्नवर्ग की पक्षधरता के कारण स्वयं

गोर्की को होरी (प्रेमचंद के 'गोदान' उपन्यास के पात्र) के आंगन में दिखाया है। इन्सानी मुहब्बत की रस्म निभानेवाले राजर्षि कुंग को ताजमहल के साये में, लिंकन के हाथ में हाथ दिये हुए बतलाया है। कहना न होगा कि शमशेर के शब्द-चित्रों में पिकासो की पेण्टिंग्स की तरह विभिन्न कालों, दृश्यों और पात्रों की सुरलियस्टिक छवि देखने को मिलती है।

रुस की सरजमीं पर निम्नवर्ग के हिमायती तालस्ताय को, स्वयं के देहाती यूपियन होंठों से बोलते हुए दिखा पाना हमारे वैश्विक धरातल-स्पेस-भूगोल की नयी वैचारिक परिधियाँ हैं। शमशेर ने देश-काल, इतिहास-स्पेस की सरहदों के अन्तर्विलय में, एक विराट थल और काल में लुई अरागों, जोश मलिहाबादी और पाब्लो नेरुदा की प्रतिबद्धता को विश्व की शांति के लिए स्वीकार है। वे लेटिन अमेरिका, ईरान, अमेरिका, रुस और भारत के विभिन्न संवेदनशील मानवतावादी रचनाकारों को मार्मिकता और अमन के रहबर के रुप में स्वीकारते हैं। यही उनका मुख्य थल-स्पेस है पर उनके रचना संसार के भूगोल में देश-काल, अतीत-वर्तमान की सारी सरहदें अन्तर्विलीन हो जाती है। वे हमारे सामने 'अमन' को चाहनेवाले शब्दकार, संगतराश की सौन्दर्य बोधी पहल लेकर आते हैं। वे धरती पर सावन भादों की चोटवालें, सृजनात्मक पक्ष के रचनाकार है। यही उनकी काल संसक्ति है और समकालीनता की सच्ची पहचान भी।

समकालीन कविता के स्पेस-काल एवं भूगोल में शमशेर एक विलक्षण कवि इसलिए प्रमाणित होते है उनकी कविता का स्थापत्य और संरचनात्मक विधान अन्यान्य कवियों से अलग है। नामवरसिंह के शब्दों में "कलाकृतियाँ भी शमशेर की संवेदनशील ऐन्द्रिय चेतना को उसी प्रकार उदबुद्ध करती है जैसे सुडौल नारी-शरीर और संध्या या उषा की लाली। वान गॉग और पिकासो के चित्र देखकर बाख का संगीत सुनकर जो कविताएँ उन्होने लिखी है। उनसे हिंदी कविता में एक नई वृति की शुरूआत हुई। भाषा का रुपाकार भी शमशेर के लिए एक आश्चर्य लोक रहा है। यह कोरी प्रयोगशीलता नहीं, बल्कि कवि की कलानुभूति का अतिरिता आयाम है।"[1] शब्द संगीत रेखाचित्र और स्थापत्य के विभिन्न आयामों को समेटनेवाली स्पेस-काल एवं विस्तृत भूगोल को समाहित करनेवाली काल-सम्पृक्ति की धरोहर रचनाएँ शमशेर ने विलक्षण सौन्दर्यबोधी भाव में रची है।

कविता को विपक्ष की सृजना, कालबोध की रचना, जीवनचरित्रि और युगबोधी समझ कई बार कहा गया है पर उसके स्पेस-थल और कालगत आयामों की चर्चा अधूरी रही है। कविता का स्पेस, काल और भूगोल संबंधी विश्लेषण हमारे काव्यगत आयामों में एक नये आस्वाद का प्रमाण है। अरविन्दातण ने भी 'कविता के थल और काल' की चर्चा की है। उनका स्पष्ट मत है कि 'कविता में वस्तुतः कवि अपने भूगोल का ही सृजन करता है लेकिन यह इतना सीमित नहीं है कि आत्मपक्ष की अभिव्यक्ति भर हो। जब सृजनकर्ता उसमें सार्वकालिक और सार्वभौमिक आकांक्षाओं को स्वरबद्ध करता है तो उसकी सामान्य परिधियाँ मिट जाती है। इसीलिए हम बहुविध भाषाओं में लिखी गयी क्लासिकी रचनाओं के तथा समकालीन रचनाओं को पढ़ पाते हैं और आस्वादन कर पाते हैं।'[2]

वास्तव में काव्यसृजन, वाचन, चिन्तन एवं मनन की सौन्दर्य बोधी प्रवृति हमें न केवल मानवीय संसलियो से जोड़ती है बल्कि वह हमें समाज शास्त्रीय बोध से संवेदनात्मक स्तर पर गम्भीर सरोकारों का गवाह व भागीदार बना देती है। कविता के काल सन्दर्भ, प्रमुख और अप्रमुख स्पेस-थल हमें मानवीय राग-विराग के अनगिनत पहलूओं से रूबरु करा देते हैं। इस संदर्भ में मुक्तिबोध कृत अंधेरे में कविता, राजकमल चौधरी कृत 'मुक्ति-प्रसंग' और धूमिल कृत 'पटकथा' कविता के साथ-साथ आलोक

धन्वा की गोली दागो पोस्टर व जनता का आदमी कविता महत्त्वपूर्ण मानी जायेगी।

कविता के स्पेस, काल, भूगोल, वैश्विक विजन, स्थापत्य, शिल्प, सौन्दर्यबोध व समाजशास्त्र के साथ साथ हमें स्त्री-विमर्श वाले पहलू पर भी विचचारना चाहिए। आलोक धन्वा की कविता ब्रूनों की बेटियाँ, युगो-युगो से दमित व अभिशापित नारी के भारतीय जीवन के अनछुए पक्षों को रेखांकित करती है जहाँ वे अंधेरे, काई, दमन और आत्म हत्या व हत्या का जीवन जीती है। 'ब्रूनों की बेटियाँ' पुरूष जाति के शोषण की विभिन्न परतों को अनावृत करती है। जहाँ वे वध कर ही जाती है जीवित बची न रहने के लिए -

'किस देश की नागरिक होती हैं वे। जहाँ उनके अस्तित्व के सारे सबूत मिटाये जाते हैं कल शाम तक और। अल आधी रात तक वे पृथ्वी की आबादी में थी। जैसे खुद पृथ्वी जैसे खुद हत्यारे। लेकिन आज की सुबह जबकि कल रात उन्हें जिन्दा जला दिया गया क्या सिर्फ जीवित आदमियों पर ही टिकी है जीवित आदमियों की दुनियाँ ?'

हत्या के दिन तक, उन्हीं के शब्दों में जिन्होने उनकी हत्या की थी, उनके नाम थे। अपने कर्म, अपने जीवन के बल-बूते पर नाम अर्जित किया था, यह नाम उनकी अस्मिता, स्पेस-थल से संबंधित है। उनके चेहरे, केश, परछाईयों का जिक्र पूरे परिवेश और स्पेस काल को गहराता है। उनके हत्याकाण्ड के बाद भी 'अस्तित्व के सबूत का मिटाया जाना, आधी रात तक पृथ्वी की आबादी में रहने का विवरण - कविता के स्पेस-थल भूगोल और कालगत विवेचन को पुख्ता करता है। हत्या की मानसिकता, हत्या की स्वरोक्ति और व्यंगात्मक टोन 'क्या सिर्फ जीवित आदमियों पर टिकी है। जीवित आदमियो की दुनियाँ ? काव्यसृजन का स्पेस और काल है जो नारियों कीअनाम हत्या का रेखांकन भी है।

भागी हुई लडकियाँ कविता - हमारे पुरुष प्रधान समाज-संरचना की मानसिकता को उद्‌घाटित करती है कई-कई आयामों वाले समाजशास्त्रीय पहलूओं को लेकर। हमारी छद्‌म कुलीनता, पुरुष वर्चस्वता की तहें वहाँ खुल जाती है, जब आलोक धन्वा दोहरी सोच वाली नैतिकता को रेखांकित करते हैं -

"तुम जो। पत्नियों को अलग रखते हो। वेश्याओं से। और प्रेमिकाओं को अलग रखते हो। पत्नियों से कितना आतंकित होते हो। जब स्त्री बेखौफ भटकती है ढूढते हुए अपना व्यक्तित्व। एक ही साथ वेश्याओं और पत्नियों। और प्रेमिकाओं में।"

पुरूषप्रधान समाज में सारी नैतिकता, शुचिता, पवित्रता, भावना और आचरण के बंधन नारी केलिए है। परम्परा और संस्कार के नाम आचरणहीनता, संस्कारहीनता को कविता का स्पेस बनाया गया है और काल का आयाम विगत दो नया-चार-पाँच शताब्दियों का हो सकता है। पौर्वात्य हो या पाश्चात्य जगत वह नारी के स्वतंत्र अस्तित्व से खौफखाता है जब वह समकालीन जीवन में स्वतंत्र अस्तित्व का भूगोल, परिवेश, काल और स्पेस तलाशती है।

अरुण कमल समकालीन कविता के क्षेत्र में 'अपनी केवल धार' और 'सबूत' संग्रह से चर्चित हुए हैं। इधर 'नये इलाके में' नामक कविता के कारण वे उपभोक्तावादी संस्कृति के विरुपण हेतु सार्थक हस्ताक्षर माने गये है। अक्सर वे अखबारी सूचना, गत्यात्मक जीवन के सामान्य पहलू को एक नये दृष्टिकोण से पेश करते हैं कि सारा माहौल हमारे नेत्रों के आगेसाजीव स्पेस-काल-परिवेश (भूगोल) मे नुमायाँ हो जाता है। वे सामान्य बिम्बों में ही कविता का प्रतीकार्यखोल देते हैं। इस उपभोक्तावादी, वैश्विक - उपनिवेशवादी संस्कृति में कहो रोज कुछ बन रहा है, हररोज नया कुछ घट रहा है पर हर

मनुष्य अपनी अस्मिता, स्वत्वबोध की अनजानी छुटपराहट कहिए या जासदी से बैचेन है। कविता का प्रसंग है इस नये इलाके में नये बसते मकानों में अक्सर काव्य का नेरेटर रास्ता भूल जाता है। यहाँ काव्यवाचक और कवि का मनोभाव एक जैसा स्पेस अपना लेता है। कारण स्पष्ट है कि अक्सर नये बनते हुए मकानों की जगह हम पुराने रास्तों, पुरानी पहचान को कायम नही रखपाते है। स्मृति का लोप होना, मानवीय अस्तित्व का लोप होना है काव्य सृजन की मूल चिन्ता अस्मिता का लोप, स्मृति का बिखराव और अपनी तलारा में भटकन का है -

"धोखा दे जाते हैं पुराने निशान। खोजता हूँ ताकता पीपल का पेड़। खोजता हूँ ढहा हुआ घर और जमीन का खाली टुकड़ा जहाँ से बायें मुड़ना था मुझे। फिर दो मकान बाद बिना रंगवाले लोहे के। फाटक का। घर था इक मंजिला।"

लगातार परिवर्तन के दौर में, उपभोक्तावादी जीवन में 'जहाँ रोज कुछ घट रहा हैं। स्मृति का भरोसा नहीं। जैसी पंक्तियाँ मनुष्य की निरुपाय स्थिति का स्पेस-स्थल, काल-परिवेश स्थती है - जहाँ खतरा है कि 'एक ही दिन में पुरानी पड़ जाती है दुनियाँ।' वैश्वीकरण और उपभोक्तावादी संसार के 'बाजार' और 'नये इलाके में' जहाँ लगातार खोने, भूलने, मिटजाने की आशंका है। एक लम्बे प्रवास या स्मृतियों के अन्तराल के बाद काव्य वाचक की स्थिति नया 'भूगोल-परिवेश अभिज्ञापति करती है -

*"जैसे बसन्त का गया पतझड को लौटा हूँ
जैसे बैशाख का गया भादो को लौटा हूँ अब
यही है उपाय कि हर दरवाजा। खटखटाओ
और पूछो -। क्या वही है वो घर ?*

मनुष्य पुराना हो जाता है पर उसकी मूल्यवता, स्वत्व बोध और इतिहासबोध की चाहत नष्ट नहीं होती है। जब सब कुछ बदल रहा है। अघट कहीं-कहीं घट रहा है। अब अपनेही परिचित मकान को तलाशने केलिए हर दरवाजा खटखटाने की नौबत आ रही है।आरौं का स्पेस हैं; विस्मृति का स्थल है, आत्म-लोप का परिवेश है और भूगोल वैश्वीकरण व उपभोक्ता संस्कृति में स्वत्वहीनता का है। एक अनबुझ आशा भी है पर आतंक के साथ -

*"समय बहुत कम है तुम्हारे पास
आ चला पानी ढहा आ रहा अकास
शायद पुकार ले कोई पहचाना उपर से
देखकर।"*[3]

लगता है कोई सर्वग्रासी प्रलय मचाता हुआ जलप्लावन आकाश ढहाते हुए आ रहा है। इस नवसंस्कृति के स्पेस-थल-काल बोध में विनाशशील व्यक्तित्व के आम आदमी के पास इस विध्वंसपूर्ण बाजार परिवेश में शायद कोर्ड ऊपर से देखकर हमें पहचान ले। यह केवल आशा है उपभोक्तावादी विशाशपूर्ण संस्कृति में। अरुण कमल 'अपनी केवल धार' कविता में भी पूंजीवादी शक्तियों और उत्पादक क्रेताओं की हकीकत बयान करते रहे हैं कि हींग, तेल, नमक, हल्दी, गेहूँ-चावल पर हक दूसरों का है। दूसरे ही लोग बेगारी ढोते हैं, अनाज को खेतों से खलिहान तक ढोते हैं। याने उत्पादन साधनों पूंजीवादी शक्तियों का कब्जा है भूमिहीन व मध्यवर्ग भी उनका ताबेदार है - सारा लोहा उनका है और अपनी केवल धारा संकेत यही रहा है अपने स्पेस-थल, काल-भूगोल परिवेश में कि हमें मेहनत करों के साथ जुड़कर 'धार' को बचाये रखना है वरना वैश्विक साम्राज्यवाद बाजारवाद, उपभोक्तावाद के 'नये इलाके मे हम कहीं खो जायेंगे। समाजशास्त्रीय बहलू भी 'नये इलाके में' खो जाने का है। इतिहास-भूगोल, काल-परिवेश, थल-स्पेस में हमारा नामो निशान भी नहीं होगा।

युवा कवयित्री काव्यायनी का मूल स्वर स्त्री विमर्श और नारी चेतना के विकसनशील रूप का है।

वास्तव में वर्तमान दौर स्त्री-मुक्ति, स्त्री विमर्श और स्त्री-निजत्व का है। वर्ग चेतना का विकास आधुनिक सभ्यता के दौर में कुण्ठित हुआ है और पुरूषवादी मानसिकता एवं उच्चवर्गीय बोध पौर्वात्य एवं पाश्चात्य देशों में समान रूप से परिव्याप्त है। स्त्रीमोनद बुआ के 'द सैकेण्ड सेक्स' और काव्यामनी के पौरूषपूर्ण समय में की कविता में भावबोध वाला अधिक अंतर नहीं है।

भारतीय नारी का जीवन केवल राष्ट्रीय मुद्दा ही नहीं है बल्कि वह वैश्विक चिन्ता का मुद्दा भी है। प्रगतिशील कविता, नयी कविता, अकविता, वामकविता, जनवादी कविता के अगले मोर्चे पर स्त्री विमर्श समकालीन सृजना का अनिवार्द पक्ष भी है। 'सात भाइयों के बीच चम्पा' कविता लोकजीवन लोकसंस्कृति और लोकचेतना के प्रतीक एवं मिथको को सहेले हुए भारतीय कन्याओं के प्रतिनिधी चरित्र को अनघुए काल-स्पेस में रेखांकित करती है। लोककथा के रुपकत्व में कविता परवान चढती है कि सात भाइयों के मध्य चम्पासयानी हुई बाप की छाती पर सयानी होने के कारण सॉपिन सी लौटती रही सपनों में काली छाया बनकर मडराती रही। अनेकानेक क्रियाएँ वर्णन की प्रवाहमयता पाठकों को झकझोरती ही नहीं बल्कि रोमॉचित भी करती है। यह कविता त्रिलोचन की काव्यनायिका चम्पा से कई मील आगे की वैचारिक संरचना है।

'चम्पा' प्रतिनिधि चरित्र है हजारों-लाखों ग्रामीण एवं मध्यवर्गीय शहरी बालिकाओं का। उस का बचपन, बेसहारापन् निरिहताबोध और सृजन शक्ति के न चुकने का अनवरत क्रम.... कविता का मुख्य स्पेस व काल बोध है। आम स्त्रियों की तरह वह शोषण की चक्की में पिसी गयी। ओखल में धान के साथ कूटी गयी, कूडे पर फेंक दी गयी... पर वह सृजनशक्ति सी अमर बेल में पनप गयी। लोककथा की मुलीबाजदा नायिका की तरह कभी छतपर लटकती पायी गयी कभी तालाब की जल कुम्भी में दफन कर दी गयी। पर चम्पा अभिनव फॅण्टेसी शिल्प की नायिका सी बदहाली बेवसी लाचारी व शोषित अवस्था के बावजूद नागफनी के बीहड में मुस्कुराती पायी गयी लोककथा और फॅण्टेसी शिल्प में काव्ययनी का बयान है -

"वहाँ एक नीलकमल उग आया। जलकुंभी के जालों से ऊपर उठकर। चम्पा फिर घर आयी देवता पर चढायी गयी। मुरझाने पर मसल कर फेंक दी गयी। जलायी गयी। उस की राख बिखेर दी गयी पूरे गाँव में। रात को बारिश हुई झमड़ कर। अगले ही दिन। हर दरवाजे के बाहर। नागफनी के बीहड घरों के बीच। निर्भय-निस्संग चम्पा। मुस्कुराती पायी गयी।

लोककथा के रूप विन्यास और फॅण्टेसी शिल्प में चम्पा नारी के स्वत्व का बोध कराती है। अतः कहना न होगा कि काव्यायनी स्त्री की निजता को सुरक्षित रखने और उसकी तीव्रतम इच्छा की अदम्य अभिव्यक्ति देने में अभूतपूर्व पहल रचती है। वह फॅण्टेसी गतशिल्प में यथार्थ और कल्पना के मिले जुले पॅटर्न इस्तेमाल करती है।

काव्यायनी केवल नारी जीवन की त्रासदी का स्पेस ही रेखांकित नहीं करती बल्कि वह गुजरते हुए दौर और आगामी भविष्य की कालगत रेखाओं में नारी के विकसनशील व्यक्तित्व और दृन्द रुप को बतलाती है -

"यह स्त्री। सब कुछ जानती है। पिंजड़े के बारे में जाल के बारे में। यंत्रणागृहों के बारे में।"[४]

आधुनिक नारी 'आंचल मे है दूध और आँखों में पानी का स्पेस-थल नहीं बुनती है वह अपने भूगोल-परिवेश के पिंजडे और उसकी यंत्रणादायक सलाखों के बारे मे जानती है वह उस पारम्पारिक जाल को भी विच्छित्न करना चाहती है जो उसे युगों-युगो से घर, परिवार, आर्थिक निराधार के रेशे-रेशें में पराधीन सा जकड़े हुए है। वास्तव में काव्यायनी की काव्यसृजना में 'यह स्त्री' सम्बोधन

गव्यात्मक स्पेस-काल में संस्थित आधुनिक नारी की परिवर्तनशील चेतना के लिए है। वह नारी पिंजडे की बात छिडने पर नीले आकाश के अनंत विस्तार में उड़ने के रोमांच के बारे में बतलाती है। वह यंत्रणागृहों की बाबत पूछने पर 'गाने लगती है ब्याह के बारे में एक गीत।' नारी विमर्श और नारी चेतना के सन्दर्भ में वह अभिलक्षित काल के आयाम और अनछुए स्पेस-थल के बारे में संकेत करती है -

''रहस्यमयी है इस स्त्री की उलट बासियाँ इन्हे समझो। इस स्त्री से डरो।''

काव्य भाषा में पारम्परिक बिम्व और प्रतीक तो है ही पर नारी के स्वत्व बोध की समाजशास्त्रीय व सौन्दर्यबोधी पहल से यहा. इन्कार नहीं किया जा सकता है कि संवेदनशील, जागरुक और आत्मचेतस नारी रहस्मयी उलटबाँसी है।

कविता के अधन परिदृश्य में देवीप्रसाद मिश्र जाति-पंति, धर्म, गौत्र, प्रांत-देश की सरहदों को पार कर एक वैश्विक बोध की मानवता का स्थल-स्पेस ''मैं'' कविता में अभिज्ञापित करते हैं जहाँ काल अतीत, वर्तमान और भूगोल के अक्षांसो में अन्तर्विलयित है, जहाँ रंग-रेखायें, नहीं पर्वत, भूगोल-परिवेश एक दूसरे में संक्रमित हो रहे हैं

''मैं साँवला हूँ। मैं काल हो सकता था अँगोला का काला। मंगोलों की तरह मैं पीला हो सकता था। मैं उस युह में घायल होता हूँ जो प्लासी में लड़ा जाता है। ... मैं सभ्यता का वह बंजारा हूँ जो आप्रवास के लिए आतुर रहता है। मेरी एक शिरा में गंगा दूसरी में बेतवा। तीसरी में सतलज और चौथी में सई है। जो नाड़ी नीली निखती है उसमें। शताब्दियों पुराने दुःख की। यमुना बढ़ती है।

देवी प्रसाद मिश्र अपनी काव्यसृजना का स्पेस-थल इतिहास, संस्कृति, स्थापत्य, वैश्वीकरण की बीथियों के बीच निर्मित करते हैं। वे अतीत की विरासत को वर्तमान में सम्हालते है। आगत भविष्य के काल भूगोल को सकारात्मक दृष्टि से चित्रित करते हैं - संस्थित करते हैं -

''मेरे पूर्वपिता आलप्स से आये। मेरी पूर्व माँ सरयू के पार किसी जंगल की थी। मैं विन्ध्य की तलहरी में रहता हूँ। मैं चाहता हूँ मेरा पौत्र यूराल के पार बसे।'' [५]

मानवीय श्रम, साहस, सक्रियता, जिजीविषा नये जीवन एव मूल्य संदर्भ है। पारम्परिक जीवन में हम आध्यात्मिक रहे होंगे। देवी-देवताओं की कृपा पर अवलम्बित होने के लिए स्तुति कर्म अपनाने रहे होंगे। पर वर्तमान औद्योगिक सभ्यता, पूंजीवादी व्यवस्था और वैश्वीकरण की प्रक्रिया में केवल श्रम, संकल्प, कर्मण्ता और जिजीविषा ही स्पेस-काल-भूगोल एवं यथार्थ का पर्याय है। जिसके कारण देवताओं की प्रतीकात्मता को नकारकर मानवीय कौशल एव ज्ञान को वास्तविक स्पेस-काल बतलाया गया है। यथा -

''इन्द्र, आप यहाँ से जायें। तो पानी बरसे मरुत, आप यहाँ से कूच करें। तो हवा चले बृहस्पति, आप यहाँ से हटें। तो बुद्धि कुछ काम करना शुरु करे। अदिति, आप यहाँ से चले तो कुछ ढंग की संततियाँ जन्मलें। रुद्र यहाँ से दफा हो। तो कुछ क्रोध आना शुरू हो''

अर्थात सारी प्रतीकात्मकता देवी-देवताओं की अर्चना वर्तमान युग में अर्यवता खो चुकी है। हम उनकी याचित-आयचित कृपा पर निर्भर न रहे बल्कि यथार्थगत सन्दर्भो के स्पेस-काल में अपने कर्म को साहस व जिसी विषा को जागृत करें, इसीलिए वे चेतावनी के तौरपर बलपूर्वक कहते हैं -

देवियों - देवताओं, हम आपसे। जो कुछ कह रहे हैं। प्रार्थना के शिल्प में नहीं।

आधुनिक जीवन सन्दर्भो ने हमारी पौराणिक परम्परा और मिथकीय चेतना को नये वैचारिक

आधार दिये है। हमे स्वयं अपनी ऋतुओं, विकास योजनाओं, संततिविकास और कार्य-कारण परिवेश का आधार निर्मित करना होगा। यही इस कविता का मुख्य स्पेस और काल संधान है, भूगोल प्रतीकात्मक अवधारणा है।

बोधिसत्व की कविताएँ एक संवेदनशील युवामानस की छटपटाहट से भरी कविताएँ है। जिस में यादे है अपने पुराने घर की धरोहर है संगीतकार पागलदास की पखावज - परम्परा और आत्मघाती राह से गुजरना। उनकी कविताओं का स्पेस बहुधर्मी और विविध वर्णी है। कहना न होगा कि बोधिसत्व की कविताओं में कहीं कहीं शमशेर की काव्यभाषा और आलोक धन्वा के रेहरोरिक का सधन प्रभाव पाया जाता है। पर एक निहायत संजीदगी बेबसी और तल्खियत का स्वर हमें विस्मित कर देता है।

स्त्री उनके यहाँ कोई खुशनुमा प्रतीक नहीं है उनके पास। स्त्री की जिन्दगी उनके यहाँ कोई अलाव सेकती हसीना की चहल कदमी नहीं है बल्कि एक तल्ख हकीकत हैं, जहाँ जिन्दगी की खुशी गमी सर्दी-गर्मी और वसन्त ऋतु की अपनी बेबसी है - लगता है यह कविता नहीं बल्कि कोलाज पेण्टिंग्स का एक दृश्य भर है। जहाँ वही स्त्री एक अपमानित आदमी की। विधवा है।' जिसे चढती उमर में पति दगा कर चुपचाप चला गया है। कविता का स्पेस कभी उसकी खुशी ? और ऋतु परिवर्तन मात्र को 'उखडे नाखून का देश' बतलाया जाना है। लगता है काल-परिवेश-भूगोल एक बारगी सुरलिस्टिक जिन्दगी में संस्थित है सामान्य पाठक अपनी संवेदना और अनुभूति से त्रिपार्श्वी आयामों में सो चला है -

"ताजे आटे की गर्मी थी उसकी खुशी वसन्त
उसके लिए। उखड़े नाखून की तरह है

नारी जीवन की त्रासद् विधवा स्थिति में वह स्त्री अपनी निरुपायता के बारे में यही भूगोल-परिवेश एवं कालबोध सोच पाती है -

आंगन बुहारते हुए वह अक्सार। कहती है
जीवन झाड़ू की तरह होता है ..... है।

वास्तव कवि का स्पेस किसी वर्ण, जाति, गौत्र, प्रांत, देश माघा की सरहदों में विभक्ता नहीं रह पाता है। यदि हम वैश्विक संरचना और उपभोक्तावाद की वर्तमान दुनिया में पूर्ण मनुष्य या अस्तित्वबोधी काल-संसक्ति के बारे में सोचे तो रामशेर की वैश्विक परम्परा आलोक धन्वा, देवी प्रसाद मिश्र अरुण कमल और बोधिसत्व के बारे में प्रवाहमान पायेंगे। बोधि सत्व का बयान है -

"मैं यहाँ हूँ। नाइजर में खे रहा हूँ डोंगी मेरी
डाँड की छाप-छाप। सुन रही है रावी में
नहा रही लडकियाँ।
मैं यहाँ हूँ। तिब्बत में। तिब्बत हूँ .... मैं
तिब्बत हूँ । का अन्नोर मचाता हुआ। मेरे पैरों
के निशान। कालाहारी के रेत में खोजता येंथर
हो रहा है कोई.... ।[६]

बोधिसत्व वैश्विक बोध के श्रमिक आस्थाओं के नयी नैतिकता बोध के कवि हैं। जहाँ काव्य का स्पेस भूगोल और काल त्रिपार्श्वी - धरातल अपनाये हुए है। वे जीवन के अलक्षित गर्भ-स्थलों में अपने अस्तित्व का आभास पाते हैं, जहाँ कोई हाथ फैलाता हुआ भिखारी हैं, धान रोपते हुए हाथ हैं, बनारस हो या अदीस अबाब कवि अपने अस्तित्व को प्राणी-मात्र, प्रकृतिमात्र के स्पेस थल और व्यापक काल-भूगोल में महसूस करता है।

अनेकानेक युवा कवियों ने माँ पर कविताएँ लिखी है। पर माँ के नाच पर लिखी गयी यह अभिव्यक्ति 'नाच' में उभरते स्वर गति, लय और विलाप के छंद को कई विरोधाभासी रंगों में उकेरती है। कविता का केन्द्रीय स्पेस 'नाच' है, और परिवेश भूगोल है कई स्त्रियों के नाच का वितान, आँगन, खेल आदि। काव्यगत काल गत्यत्त्मक स्वरुप अपनाये हुए है न वह अतीत है और नहीं पूर्ण वर्तमान

वर्णन है -

"वहाँ कई स्त्रियाँ थी। जो नाच रही थी गाते हुए। वे खेत में नाच रही थी या आँगन में यह उन्हें भी नहीं पता था। एक मटमैले वितान के नीचे था। चल रहा यह नाच

कविता का मुख्य स्पेस माँ का नाच अपने अनुषग में काल का त्रिआयामी स्वरुप उकेरता है जो महिलाएँ उसके साथ नाचती रही थी और जिन्हे माँ के बार नाचना था वे माँ के सधे नाच और पुराने तरी के गीत पर अचम्भित है। कविता के अंत में काल और स्पेस की कई तहें पाठ कों की संवेदना व कल्पना के थल पर खुलती चली जाती हैं। भावों एवं विचारों के आपसी संतरण और अर्थ के कई अक्षांस यहाँ रेखांक्ति होते हैं -

"अचानक ही हुआ माँ का गाना बंद। पर नाचना जारी रहा। वह इतनी गति में भी कि पर बस घूमती जा रही थी। फिर गाने की जगह उठा। विलाप का स्वर। और फैलता गया उसका वितान। वह नाचती रही बिलखते हुए। धरती के इस छोर से उस छोर तक। समुद्र की लहरों से लेकर जुते हुए खेत तक। सब भरे थे उस की नाच की धमक से। सब में समाया हुआ था उसका बिलखता हुआ गाना।[७]

'नाच' केन्द्रीय विषयवस्तु है पर गाने और नाचने की अन्तर्विलयन वाली धारा जब गाने की जगह निलाप का राग अपना लेती है जिसका वितान फैलताही जा रहा है। 'नाच'वाला स्पेस माँ के निलखते हुए स्वरुप में धरती के इस घोर से उस घोर तक परिव्याप्त है,.... यह काव्य सृजना में विडम्बन और विसंगति के प्रतिमान को प्रतिध्वनित करता है नयी समीक्षा के आधार पर। पर समाज शास्त्रीय पहलू से 'स्त्री रुपकमाँ का' बिलखते हुए नाचना, धरती के इस घोर से घोर तक समुद्र की लहरों से लेकर जुते हुऐ खेत तक, कविता को अभिनव स्पेस, परिवेश, भूगोल और मूल्य चेतस भावना प्रदान करता है। जिस में कोई नर्तकी हो, नारी चेतना की स्वगत यात्रा हो, समुद्र की लहरों पर नृत्य करती मछुवान हो या खेतों में जुताई-बुवाई करती श्रमिक नारी हो..... सब नाच की धमक में भरी डमी है। संसार की सभी नारियों में समाया हुआ बिलखता हुआ गाना। यह काव्य सृजना की नारी-विमर्श की नयी त्वरा है जिसे सृजनशक्ति, श्रमिक शक्ति, दुर्धष नारी रूप के नाच और बिलखने के विसंगति रूप में तरारा मिली है।

काव्यसृजन का यह नया स्पेस है, चेतना के धरातल पर नवउन्मेष है। शमशेर का वैश्विक रोमांटिक बोध हो, स्पेस-काल धरातल पर, अथवा आलोक धन्वा द्वारा वर्णित कुलीनता की हिंसा। काव्यायनी का नारी विमर्श हो या देवी प्रसाद मिश्र का इतिहास बोध वह बधिसत्व के द्वारा वर्णित स्पेस-काल-भूगोल और सौण्दर्य बोधी समाजशास्त्रीय सन्दर्भों का अभिनव वैचारिक संस्थल है।

सन्दर्भ :-

१) नामवर सिंह : शमशेर बहादुरसिंह : प्रतिनिधि कविताएँ पृ. ७
२) ए. अरविन्दाक्षण : कविता का थल और काल पृ. ९
३) अरूण कमल : नये इलाके में
४) काव्यायनी : इस पौरूषपूर्ण समय में
५) देवीप्रसाद मिश्र : प्रार्थना के शितप में नहीं पृ. १२३
६) बोधिसत्व : सिर्फ कवि नहीं पृ. २८
७) बोधिसत्व : हम जो नदियों का संगम है पृ. २७

हार्दिक शुभेच्छा !

प्रा. जी. के. मोरे